International Journal of Information Movement *Vol. 8 Issue XI* *(March, 2024)*
Website: www.ijim.in *ISSN: 2456-0553 (online)* **Pages 40-45**

पातञ्जल योगसूत्र में संक्षिप्त 'यम' मीमांसा

रविन्द्र कुमार
शोधार्थी
योग विभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय
Email-id: raviyogaachariya8899@gmail.com
और
डॉ0 विकास आर्य
असिस्टंेट प्रोफेसर
योग विभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय
पोखड़ा, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड़

सारांश
भारतीय अनुसंधान परंपरा का इतिहास प्राचीन है, और वेद ग्रंथों को ज्ञान के प्रमुख स्त्रोत के रूप में माना जाता है। यह परंपरा न केवल राष्ट्रीय गरिमा के लिए है, बल्कि समस्त सर्वहितकारी एवं सर्वकल्याणकारी अनुसंधान का स्रोत भी है। योगसूत्रा में योग को अनुशासन के रूप में परिभाषित किया गया है और अनुशासन को ही योग का तत्त्व माना गया है।

मुख्य शब्दः भारतीय अनुसंधान, परंपरा, वेद ग्रंथ, ज्ञान, योगसूत्र, अनुशासन, सर्वहितकारी, समाधि, न्यायदर्शन, अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

1.0 परिचय:

यह सर्वविदित है कि भारतीय अनुसंधानात्मक परम्परा का इतिहास बहुत पुराना है। इसकी प्राचीनता में कोई सन्देह मात्र नहीं और यह प्रमाणिकता भी तथ्यपूर्ण है कि ज्ञान के सर्वप्रथम स्त्रोत वेद ग्रन्थ ही है। वस्तुतः ज्ञान प्रधान होने का श्रेय निस्संदेह वेद ग्रन्थों को दिया गया। क्योंकि विद्वज्जनों की मण्डली में व्यवहारिक दृष्टिकोण ही इसके श्रेय का प्रमुख आधार ज्ञात होता है। चूंकि परम्परागत इस संकल्प ने मनुष्य को वैचारिक रूप से ही सबल बनाया है। इस हेतु एक निश्चित समयानुसार ही यहां ग्रन्थ परम्परा भी स्व अस्तित्व के साथ जीवित रही और नास्तिक परम्परा के विरुद्ध जहां आस्तिक षड्दर्शनों ने उसे पुनर्जीवित ही नहीं किया, बल्कि अपने अस्तित्व को भी सुरक्षित किया। अतः इस ग्रन्थ परम्परा में राष्ट्रीय गरिमा का हितार्थ ही नहीं, प्रत्युत सर्वहितकारी एवं सर्वकल्याणकारी अनुसंधान उपलब्ध होता है। क्योंकि 'सर्व' शब्द की इस अर्थप्रद शाब्दिक मीमांसा से उस विद्या का विवेचन करना अनिवार्य हो गया है, जिसके अभ्यास के फलत अभ्यासी साधक वैश्विक स्तर पर शारीरिक एवं मानसिक लाभ उठा रहें हैं अथवा लाभ प्राप्त करने का सामर्थ्य पैदा कर सकते हैं।

अतएव इस चर्चा के प्रसंग में योग वह अभ्यास ज्ञात होता है, जिसने चिकित्सा जगत की विविध भ्रान्ति को दूर किया है। तथा उस संशय पर भी कड़ा प्रहार ही किया है, जिसने पातञ्जल योगसूत्र को मात्र साधना पक्ष ही अंगीकार किया है। योग का शाब्दिक अर्थ जोड़ना तथा मिलाना[i], अर्थात् एक से दूसरे पक्ष का ज्ञानपूर्वक संयोग ही योग है। तथा इस चर्चा के प्रसंग में महर्षि पतञ्जलि स्व दर्शन यानी पातञ्जल योगसूत्र में सुस्पष्ट यह

करते है कि अनुशासन ही योग है[ii] और न्यायदर्शन भी योगसूत्र के समरूप ही इस उल्लेखनीय विवेचन में योग एवं समाधि को एक ही अर्थ में स्वीकार करता है।[iii] सन्दर्भित इस चर्चा से ज्ञात यह होता है कि योगसूत्र के 1/1 सूत्र और अष्टांगयोग के अन्तिम साधन समाधि[iv] का भावार्थ अत्यन्त पृथक् नहीं है। इसलिए अष्टांगयोग के प्रथम साधन 'यम' के द्वारा उन सभी अनुसरण करने योग्य तत्त्वों पर प्रकाश डालना आवश्यक है, जिनके अभ्यास से सामाजिक अनुशासन को बल मिलता है।[v] 'यम' शब्द 'यम उपरमे' धातु से निर्मित हुआ है। अतः यम उन्हें कहा गया है जिनका संकल्पित पालन बाह्य विषयों से इन्द्रियों को पृथक् करता है।[vi] प्रत्युत अन्यत्र प्राप्त तथ्यपूर्ण साक्ष्यों के आधार पर यह भी सुविदित होता है कि यम कि अपेक्षा नियम के अन्तर्गत समाविष्ट सभी तत्त्व व्यक्तिगत आचार संहिता से सम्बन्धित है और यम सामाजिक अनुशासन का एक प्रबल पक्ष अर्थात् आचार संहिता है।[vii] लेकिन हठप्रदीपिका में अहिंसा सहित अन्य तत्त्वों को यम नहीं बल्कि नियम तत्त्व के रूप में ही स्वीकार किया गया है।[viii]

वस्तुतः उपर्युक्त इस विवेचन में हठयोग ग्रन्थ आधार नहीं है और सर्व योग प्रद पद्धतियां तिरस्कार भी अंगीकार नहीं है। प्रत्युत पातञ्जल योगसूत्र में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह[ix] के साथ समस्त 'यम' तत्त्वों की प्रमाणिकता अनिवार्यता है और उन सभी प्रमाणों के साथ उल्लेखनीय भी है जो प्रासंगिक है। अतएव पातञ्जल योगसूत्र के अनुसार विवेचन निम्नवत् है:-

2.0 अहिंसा -

उपर्युक्त वर्णित एवं क्रमश्रृंखला के अनुसार प्रथम स्थान प्राप्त यह अहिंसा तत्त्व, अन्य सभी तत्त्वों के साथ आचार नियमों से जहां सम्बन्धित है।[x] तो आचरणीय सभी तत्त्वों का आधार भी है। चूंकि दर्शनों से पृथक्, प्रत्युत उनके अत्यन्त सामीप्य समझी गयी, भाषा संस्कृत की श्लोक स्वरूप विशद् पंक्तियों से सुस्पष्ट यह होता है कि आचारः परमो धर्म: अर्थात् आचार (श्रेष्ठ व्यवहार) ही परम धर्म है।[xi] और मनुस्मृति ने भी आचरण सम्बन्धी नियमों का उल्लेख आचारः परमो धर्म कहकर ही किया गया है।[xii] सन्दर्भित इस चर्चा में अन्यत्र प्राप्त प्रमाणों की सहायता से विदित यह हुआ है कि 'अहिंसा परमो धर्म:'[xiii] यानी अहिंसा परम धर्म है। क्योंकि अहिंसा में प्रतिष्ठित होने के फलतः उस अहिंसक साधक के समीप आ करके वह सभी हिसंक और विषधर प्राणी भी स्व क्रूरता का त्याग कर देते हैं, जिनका जीवन माँस आदि पर ही निर्भर है। अर्थात् मित्रवत् व्यवहार करने लग जाते हैं।[xiv]

वस्तुत: जहां मित्र शब्द उदाहरणार्थ प्रमाणित किया जाता है। वहां व्यवहारिक उद्देश्यों को ध्यान में रखना एक विशद् चुनौती होती है। इस हेतु सत्य तत्त्व साधन अपने निज रूप में स्वतः ही समाविष्ट हो जाता है। अर्थात् भावार्थ है समर्पित ही समर्पण के सदैव उद्यत रहते हैं। फिर असत्य प्रभाव कहां प्रभावित कर सकता है। यथोक्त इस चर्चा के सन्दर्भ में सुस्पष्ट यह भी होता है कि जैन मत की योग विषयक मान्यताओं के अनुसार योग का आधार स्तम्भ सत्य है। यानी एक ऐसा दोष मुक्त संकल्प जो हमको दोष पूर्ण, अहितकर अर्थात् अहितकारी, कटु वचन न बोलने के लिए सर्वथा प्रेरित करता हैं। तथा इसी क्रमश्रृंखला की गति को विराम न

देते हुए जैन मत का सुस्पष्टता प्रद यह सत्यनिष्ठ विचार अपनी (निज) पावनमय स्पष्टता के साथ उल्लेख यह भी करता है कि सत्य विचार अथवा सत्य संकल्प धारण कर्त्ताओं को लोभवश, क्रोधवश जैसे अशिष्ट व्यवहार से दूर रहना चाहिए और हँसी-मजाक व चालाकी पूर्वक, अतिशीघ्रता के साथ कदापि नहीं बोलना न बोलें। तथा भययुक्त ऐसा कोई कारण न हो जो हमें असत्य प्रद व्यवहार के लिए ही प्रेरित करता हो। ये सभी सैद्धान्तिक संकल्प सत्य के अन्तर्गत ही समाविष्ट होते हैं।[xv] सन्दर्भित इस चर्चा में पातञ्जल योग सूत्र सुस्पष्ट करता है कि सत्य में संस्थित साधक की वाणी अचूक हो जाती है, वह जो कहता है किसी घटनाओं से पूर्व भी कहता है।[xvi] तथा इसी क्रमबद्धता के अनुसार यम साधन दृष्टिकोण से ही अस्तेय एक लघु साधन ज्ञात होता है, प्रत्युत उसकी सैद्धान्तिक मान्यताएं उसे इस प्रकार से दीर्घ साधन सिद्ध करने की सारगर्भित चेष्टा करती है। यह विशद् विवेचन निम्नवत् हैं :-

अस्तेय से अभिप्राय है कि प्रत्येक मनुष्य को स्व अतिरिक्त एकत्रित धन संग्रह का उपयोग छल पूर्वक निज हितार्थ नहीं करना चाहिए। चूंकि सन्दर्भित इस चर्चा में अन्यत्र प्राप्त प्रमाणों के आधार पर सिद्ध यह होता है कि दूसरों द्रव्यों के लिए स्पृहा का होना चोरी है।[xvii] उपर्युक्त मीमांसा में द्रव्य शब्द से तात्पर्य धन नहीं है, बल्कि शक्तिहीन को दबाना, किसी भी बलहीन के अधिकारों पर निज अधिकार सिद्ध करना, नैसर्गिक वस्तुओं की प्रकृति परिवर्तित करना, रिश्वत लेकर जीविका चलाना इत्यादि समस्त दुष्कृत्यों को इस क्रमश्रृंखला में सम्मिलित किया जाता है।[xviii] वैदिक संहिताओं में भी अस्तेय को पूर्णतः त्याज्य मानकर, स्तेय की भर्त्सना वर्णित है।[xix] तथा महर्षि पतञ्जलि द्वारा स्पष्ट यह होता है कि जब चोरी की प्रवृत्ति क्षीण हो जाती है, तब उस संस्थित साधक के समीप समस्त रत्न उपस्थित होना कोई विस्मय नहीं है।[xx] यानी कदापि अनुचित ढंग से (अनुशासनहीनता पूर्वक) धन संग्रहित करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती है। उपर्युक्त समस्त साधनों में मनसा, वाचा, कमर्णा का बड़ा विशिष्ट महत्त्व है और यही महत्ता चतुर्थ ब्रह्मचर्य साधन में भी इस प्रकार विदित हैं-गुप्तेन्द्रिय उपस्थ का संयम जब संस्थित साधक या साधिका करते है, तब वह ब्रह्मचारी अथवा ब्रह्मचारिणी कहे जाते है।[xxi]

कठरुद्रोपनिषद् सन्दर्भित इस चर्चा में आठ प्रकार के संयम की विवेचना इस प्रकार करता है कि ब्रह्मचारी नारियों का दर्शन न करें और यदि इस विवेचन में ब्रह्मचारी के स्थान पर ब्रह्मचारिणी शब्द समाविष्ट हुआ होता तो ब्रह्मचारणियों के लिए ब्रह्मचारी का दर्शन निषेध होता। इस हेतु यहां विपरीत लिंग दर्शन निषेध है। तथा इसी क्रमबद्धता में शारीरिक त्वचा स्पर्श, अनावश्यक वार्ता, गुह्य (भोग विलास से सम्बन्धित विषय) बार-बार विपरीत लिंग के साथ दैहिक भोग विषयों स्पष्ट करना, क्रीड़ा, भोग-विलास संकल्प, रति-क्रीड़ा विषयों से प्रेरित होकर उनके सम्पर्क में बने रहना एवं प्रयत्न करना, तथा सम्भोग क्रिया, उक्त मैथुन ब्रह्मचर्य पालन में पूर्णतः त्याज्य या वर्जित है।[xxii]

इसी प्रकार ब्रह्मचारी विषय विवेचन जो पातञ्जल योगसूत्र में प्राप्त होता है वह सन्दर्भित विषय से पृथक् सिद्ध नहीं होता, चूंकि वह भी ब्रह्मचारियों की गणना शक्ति सम्पन्न, बल पराक्रम सम्पन्न एवं वीर्य सम्पन्न कर्त्ताओं में

करता प्रतीत होता है।[xxiii] और अब इसी यम क्रमश्रृंखला के अन्तिम साधन अपरिग्रह विषयक मीमांसा इस प्रकार हैं- 'ग्रह उपादाने' धातु संयोग के फलतः एवं 'परि' उपसर्ग पूर्वक परिग्रह शब्द का निर्माण होता है। शाब्दिक अर्थ मीमांसा से तात्पर्य है- सर्वत्र ग्रहण करना और 'अपरिग्रह' मीमांसा 'परिग्रह' के विरुद्ध इस प्रकार ज्ञात होती है कि अपरिग्रह की साधना से पूर्व साधक भोग विषयक पदार्थों का संग्रह आवश्यकता से अधिक कदापि न करें, चूंकि छीना-झपटी से राष्ट्र संकट में पड़ जाता है और अपरिग्रह पालन का संकल्प राष्ट्र उन्नति एवं उसके उत्थान का हेतु है। अतः यथोक्त संकल्प का अत्यधिक प्रचार भी आवश्यक है, क्योंकि इस उल्लेखनीय विवेचन से प्रभावित होने का अभिप्राय है-भूखमरी की समस्या सदा के समाप्त हो जाना।[xxiv]

महर्षि पतञ्जलि सन्दर्भित इस चर्चा में अपरिग्रह साधना के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले फल का विवेचन इस प्रकार करते है कि अपरिग्रह की सिद्धि जिस साधक को हो जाती है, उसे अपने पूर्व जन्म से सम्बन्धित जाति, आयु, भोग भी स्मरण हो जाते हैं।[xxv] क्या सन्दर्भित यह अनुसंधान वर्णन ऐसे विवेकशील मनुष्यों के लिए ही प्रेरणा प्रद है, जिनकी जीवनचर्या में आध्यात्मिक पक्ष अत्याधिक महत्त्व रखता है? सम्भवतः क्योंकि सभी मनुष्यों की प्रकृति व प्रवृत्ति उन सभी आकांक्षाएं एवं महत्वकांक्षाएं समरूप नहीं होती और यह आध्यात्मिक विषय विवेचन ही नहीं, प्रत्युत जो भी विषय विवेचन प्रकाशित अथवा प्रचारित होता है, उसमें पिता तथा पुत्र भी समान रूप से रूचि नहीं रख पाते। अतः लगता है, अतएव ही यम विषयक विवेचन को यौगिक चिकित्सा से जोड़ा गया है और योग वैश्विक स्तर पर किस प्रकार विकसित हुआ है, इसका श्रेय यदि आध्यात्मिकता को दिया जाता है तो इस चर्चा में कोई विस्मय नहीं है। यौगिक चिकित्सा के द्वारा यम लाभ वर्णन निम्नवत् है :-

यम पालन के फलस्वरूप साधारण मनुष्य की सोच विकसित हो जाती है, अर्थात् मनुष्य के मस्तिष्क में एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण स्थापित हो जाता है। नकारात्मकता क्षीण होती है और सकारात्मकता में वृद्धि हो जाती है। तथा मनुष्य शरीर से सम्बन्धित स्वचालित तंत्रिका तन्त्र, माँसपेशीय तन्त्र, अन्तः स्त्रावी ग्रन्थीय तन्त्र एवं श्वसन तन्त्र, उत्सर्जन तन्त्र व उदर प्रदेश का आन्तरिक भाग (पाचन तन्त्र) आदि अर्थात् समस्त शारीरिक गतिशीलता के मध्य सन्तुलन बनता हैं, चूंकि देह सम्बन्धी सभी क्रियात्मक एवं रचनात्मक अवस्थाएं भी समन्वय रूप से ही सञ्चालित रहती है। प्रत्युत यह अभ्यास विधिवत् करने से ही लाभप्रद सिद्ध होगा।[xxvi]

3.0 निष्कर्ष -

योगसूत्र में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह सहित वह यम तत्त्व है, जिनकी मीमांसा विविध प्रश्नों को विशुद्ध मौलिकता के साथ जन्म देती है और इन सभी आचरणीय तत्त्वों में भी अहिंसा के अतिरिक्त किसी ओर को प्रथम स्थान प्राप्त न होना भी एक अनुसंधानात्मक दृष्टिकोण ही है। चूंकि सत्य का आधार अहिंसा है, अस्तेय का आधार स्तम्भ अहिंसा है, ब्रह्मचर्य व्रत धारण में भी अहिंसा की जो भूमिका है वही भूमिका अपरिग्रह सिद्धि में परमावश्यक है। अतः सन्दर्भित विवेचन आध्यात्मिक दृष्टिकोण का पक्षधर प्रतीत होता है, प्रत्युत जब यम तत्त्व विवेचन यौगिक चिकित्सा के साथ होता है, तब ज्ञात यह होता है कि यह आध्यात्मिक

दृष्टिकोण ही नहीं अपितु संसारिक भी है। अतः आधुनिक इस युग में यम तत्त्वों का पालन सभी को करना चाहिए।

4.0 पाद टिप्पणी

1. [i] भारद्वाज, डॉ० शिवप्रसाद, मानक विशाल हिन्दी शब्दकोश, अनिल प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2018, पृ० सं०573
2. [ii] अथ योगानुशासनम् ।। योगसूत्र 1/1
3. [iii] शास्त्री, आचार्य उदयवीर, न्यायदर्शनम्, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली, संस्करण: 2018, पृ० सं० 3
4. [iv] समाधयोऽष्टावङ्गानि ।। योगसूत्र 2/29
5. [v] गिरि, डॉ० राकेश, स्वस्थवृत्त विज्ञान एवं यौगिक चिकित्सा, शिक्षा भारती (उत्तराखण्ड) निकुञ्ज विहार, आर्यनगर, हरिद्वार, प्रथम संस्करण : 2018 पृ०सं०230
6. [vi] वेदालंकार, आचार्य, रामप्रसाद, वैदिक योगामृत, आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार, न्यास वेदसदन, आर्य नगर, ज्वालापुर हरिद्वार, संस्करण : 2018 पृ०सं० 28
7. [vii] गिरि, डॉ० राकेश, स्वस्थवृत्त विज्ञान एवं यौगिक चिकित्सा, शिक्षा भारती (उत्तराखण्ड) निकुञ्ज विहार, आर्यनगर, हरिद्वार प्रथम संस्करण : 2018, पृ० सं०230
8. [viii] अहिंसा नियमेष्विव । हठप्रदीपिका 1/38
9. [ix] अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः ।। योगसूत्र 2/30
10. [x] सार्वभौमा महाव्रतम् ।। योगसूत्र 2/31
11. [xi] द्विवेदी, डॉ० कपिल देव, प्रौढ़-रचनानुवादकौमुदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ० सं० 384
12. [xii] मनुस्मृति 1/108
13. [xiii] द्विवेदी, डॉ० कपिलदेव, रचनानुवादकौमुदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण: 35, पृ० सं० 233
14. [xiv] अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः ।। योगसूत्र 2/35
15. [xv] भारद्वाज, प्रो० ईश्वर, मानव चेतना, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2015, पृ० सं० 247, 248
16. [xvi] सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ।। योगसूत्र 2/36
17. [xvii] उपाध्याय, आचार्य, बलदेव, भारतीय दर्शन, शारदा मन्दिर वाराणसी, पुनर्मुद्रण: 2016, पृ० सं० 301

18. [xviii] भारद्वाज, डॉ० ईश्वर, औपनिषदिक अध्यात्म विज्ञान, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, संस्करण 2018 पृ० सं० 103
19. [xix] सरस्वती, स्वामी दिव्यानन्द, वेदों में योग विद्या, यौगिक शोध संस्थान, योगधाम, ज्वालापुर, हरिद्वार, द्वितीय संस्करण मार्च 1999, पृ० सं० 244
20. [xx] अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।। योगसूत्र 2/37
21. [xxi] उपाध्याय, आचार्य बलदेव, भारतीय दर्शन, शारदा मन्दिर, वाराणसी, पुनर्मुद्रण: 2016, पृ० सं०30
22. [xxii] ब्रह्मचर्येण संतिष्ठेदप्रमादेन मस्करी। दर्शनं स्पर्शनं केलीः कीर्तनं गुह्यभाषणम् ।।9।। संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेव च। एतन्मैथुनमष्टाङ्ग प्रवदन्ति मनीषिणः ।।10।1 विपरितं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः। यज्जगद्भासकं भानं नित्यं भाति स्वतः स्फुरत्।।।।।।
23. [xxiii] ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ।। योगसूत्र 2/38
24. [xxiv] भारद्वाज, प्रो० ईश्वर, औपनिषदिक अध्यात्म विज्ञान, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृ० सं०104, 105
25. [xxv] अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ।। योगसूत्र 2/39
26. [xxvi] गिरि, डॉ०राकेश, स्वस्थवृत्त विज्ञान एवं यौगिक चिकित्सा, शिक्षा भारती (उत्तराखण्ड) निकुञ्ज विहार, आर्यनगर, हरिद्वार, प्रथम संस्करण : 2015, पृ० सं० 98